मनुष्य बनो

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की २२ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २५.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४३	नवम्बर-६३	अङ्क— २

प्रेम धारा से :

शब्द

राधास्वामी नाम लिया अब, राधास्वामी धाम भी लो।
धर्म लिया और अर्थ लिया, और मोक्ष लिया अब काम भी लो ॥

चोरासी का चक्कर लगाकर, घूमे फिरे मारे।
मानुष जन्म मिला अब तुमको, सत्लोक विश्राम भी लो ॥

उम्र गुजर गई पूजा करते, मत्थे रगड़े शीश नबाये।
अब तो सुरत चढ़ाकर ऊपर, देवों से प्रणाम भी लो ॥

गीत सुने बाहरी कानों से, अन्तर के दरवाजे बन्द।
दशवें द्वारे चल कर अब तो, अन्तर का इल्हाम भी लो ॥

हरुफों का तो जाप किया, हरुफों ने कहीं पहुँचाया ना।
धुन पकड़ाये भरम मिटाये, ऐसे गुरु से नाम भी लो ॥

बिन जिव्हा के नाम जो जपते, बिन कान के धुन सुनते।
बिन आँखों जो दर्शन करते, उनसे असल मुकाम भी लो ॥

शिवव्रतलाल जी महाराज

वशिष्ठ की कथा

वशिष्ठ जो बोले :—

ऐ ऋषियो ! फकीर का वृतान्त सुनो।
जो कुछ मुझ पर गुजरी, उसको भी जरा सुनो ।।
पर बीती क्या सुनाऊँ, सुनो अपनी बीती को।
ध्यान देकर मेरी कहानी, जरा सुनो।

यह विश्वामित्र जो ऋषियों में श्रेष्ठ हैं बड़े विद्वान और बड़े तपस्वी हैं। पहले ये राजा थे जिनके भय से शत्रुओं का हृदय काँपता था। एक समय ये मेरे पास आये। मैंने राजा समझकर बड़ी आवभगत की। मैं साधू हूँ मेरे पास क्या धरा था। केवल कामधेनु गाय मेरे पास थी। राजा जाति और देश का स्वामी समझा जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब उसका सम्मान करते हैं। संसार में राजा से बढ़कर किसी का पद नहीं है, चाहे ऋषि-मुनि कोई भी हो, सबको उसका मान करना चाहिये, क्यों कि यदि राजा न हो तो ससार का प्रबन्ध नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और कोई किसी की नहीं सुनता। राजा के भ्रष्ट होने से कर्म -धर्म सब मिटटी में मिल जाते हैं और देश में अराजकता फैल जाती है। मैंने विश्वामित्र का आदर के साथ स्वागत किया और कामधेनु गाय की सहायता से जो कुछ मुझसे हो सका उनके आदर

सत्कार में कोई कमी नहीं रक्खी। विश्वामित्र ने देखा कि मैं एक फूस के झोपड़े में रहता था जिसमें प्रत्यक्ष में कोई भी सामिग्री नहीं थी, मगर जब उनके और उनकी सेना के आवश्यकतानुसार सब सामिग्रियाँ दम के दम में एकत्रित हो गई तो उनको आश्चर्य हुआ। पूछने लगे कि तुम देखने में तो साधारण साधू हो और तुम्हारा झोंपड़ा दरिद्रता का रूपक बना हुआ है परन्तु तुम कैसे तुरन्त जो चाहते हो एकत्रित कर लेते हो। मुझको विश्वामित्र से छिपाना तो था नहीं। उनके अध्यात्म (रूहानियत) के फुकरने का समय भी निकट आ रहा था। मैंने बड़ी नम्रता से कहा कि भगवन्! मेरे पास कामधेनु गाय है जो सारी आवश्यकताओं को पूरी कर देती है। उन्होंने कहा कि यह कामधेनु गाय मुझको दे दो। भला मुझको इसका विरोध कब हो सकता था। मगर विश्वामित्र उसके अधिकारी नही बने थे। अतः मैंने उत्तर दिया कि वह तुमको नही मिल सकती। इस पर विश्वामित्र अधिक क्रोधित हो गये और चाहा कि मुझसे कामधेनु गाय बलात छीन लें। मगर जब वह लड़ने को उतारू हुये तो कामधेनु गाय के शरीर से सैकड़ों राक्षस और दैत्य उत्पन्न हो गये और उन्होंने उनकी सेना को दम के दम में मार गिराया। यह दशा कई बार हुई। अन्त में विश्वामित्र हार गये और कहने लगे कि ब्रह्म तेज के सामने क्षत्रिय का तेज कुछ नहीं है और यह ब्रह्मर्षि बनने के लिये तप करने लगे। जिसमें उनको कई प्रकार के अनुभव प्राप्त हुये। एकाध बार उनको लज्जित भी होना पडा। इन्द्र ने अपनी अपसरा के द्वारा उनका तप भंग कर दिया। यह उसके छल कपट में आ गये और तप को छोड़कर भोग विलास करने लगे। परिणाम यह हुआ कि मैनका के पेट से शकुन्तला उत्पन्न हुई। उस

समय अप्सरा तो भय के कारण इन्द्र लोक को भाग गई और उनको अपने किये हुये कर्म पर घृणा होने लगी। चूँकि साहसी थे, फिर सम्भल गये और अपने तप को पूर्ण कर लिया जिसके कारण उनमें कई प्रकार की शक्तियां उत्पन्न हो गई वह अभिमानी बनकर मेरे पास आये। मैं जानता था कि इनमें राजऋषि के सब गुण और शक्तियाँ विद्यमान हैं। केने कहा कि आइये राजऋषि ! इस पर वह आग बबूला हो गये। क्योंकि वह चाहते थे कि मैं इनको ब्रह्मऋषि कहूँ मगर मैं झूँठ कैसे बोलता। वह मुझसे शत्रुता करने लगे। तत्पश्चात कई बार मिले मगर राजऋषि के नाम से सम्बोधन किये मैंने पर सदा ही चिड़ा करते थे। मुझको उनके बैर का तनिक भी ख्याल नहीं था। वह इस बात को जानते भी थे, मगर सब तपादि करने पर भी उनको मेरे कामधेनु गाय का फिर भी भय था। सामना करने के लिये कभी नहीं आये लेकिन बदनामी कराने का कोई उपाय न उठा रक्खा। यही नहीं बल्कि उन्होंने क्रोध में आकर मेरे सब लड़कों को मार डाला।

विश्वामित्र सदा मेरे विरोध पर तुले रहते थे और बहुत बुरी तरह से मेरी खबर लेते थे। मैं जिस बात को हाँ कहता था, यह अकारण ही उसको नहीं मानते थे। एक अवसर पर मेरी जिभ्या से निकल गया कि संसार में हरिश्चन्द्र से अधिक सत्यवादी कोई राजा नहीं है। यह इतनी सी बात पर बोखला उठे कि उसके झूँठा सिद्ध करने के लिये पृथ्वी आकाश को एक कर दिया। उस विचारे का राजपाट छीन लिया चूँकि यह तपस्वी थे, इच्छा शक्ति तीव्र थी, स्वप्न की दशा में अपने विचार की धार के बल से उससे अयोध्या

के राज देने का बचन लिया था और राज लेकर उसको विवश किया कि वह अपने आपको दक्षिणा के लिये चाण्डाल के घर बेच दे। ऐसा ही हुआ। उस पर भिन्न-भिन्न प्रकार की बलायें आई परन्तु वह अपने सत पर आरुढ़ रहा। इस पर भी उनको मेरी बात का विश्वास कम था।

दूसरे अवसर पर यह मुझसे मिले। कहने लगे कि तप व पुरुषार्थ में सबसे अधिक बल है। मेरे मुँह से निकल गया कि सत्संग में अधिक बल है। फिर क्या था कि यह लड़ने झगड़ने लगे। अन्ततः शेषनाग ने इनको समझा बुझाकर यह बात मनवाई। उस समय इनको अधिक लज्जित होना पड़ा, लेकिन मुझसे विरोध के विचार इनके हृदय से दूर नहीं हुये और इस पर भी वह इच्छा रखते थे कि मैं उनको ब्रह्म ऋषि कहूं। इसमें उनका दोष ही क्या था? यह तो झूँठे गुनावनों के दास हो रहे थे। इसलिये सच्चाई से दूर रहते थे। ऋषियो! मनुष्य हजार लिखे-पढ़े, हजार जप-तप योग का साधन करे, लेकिन हृदय में जरा सी मलोनता रहेगी तो वह समदर्शी व आत्मदर्शी कभी न हो सकेगा और ब्रह्म ज्ञान से सदा बचित रहेगा। ज्ञान बहुत कठिन है और सहज भी है। इसके लिये मनुष्य को उच्च दृष्टा और विशाल हृदय वाला बनने की आवश्यकता है और जब तक वह ऐसा न हो जाय ब्रह्म ऋषि का पदवी कैसे दी जाय। यह सच है मैं इनको सदा राज ऋषि कहा करता था। राज ऋषी उसको कहते हैं जिसने योग आदि का साधन कर लिया हो और सिद्धिशक्ती वाला हो गया हो। वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है मगर ज्ञान से वह फिर भी दूर रहेगा क्योंकि योग

केवल साधन मात्र है और जो इसको सब कुछ समझता है वह ब्रह्म ज्ञान से अभी कोसों दूर है। इसलिये मैंने इनको राजऋषि ही कहना उचित समझा मगर मनमें इनका सम्मान फिर भी बहुत कुछ था। जैसे राजा सब में सम्मानित होता है वैसे ऋषियों में राजऋषि की पदवी है।

अगस्त ने पूछा--"ऐ तत्ववेत्ता वशिष्ठ। हम लोग तुम्हारी बातों को बड़े ध्यान पूर्वक सुन रहे हैं मगर विश्वामित्र की अनसमझी को दूर करने के लिये तुम तनिक यह तो बताओ कि कामधेनु क्या वस्तु है ?"

वशिष्ठ जी बोले कि कामधेनु नाम है आत्मा की शक्ति का, जो बुद्धि और मन से बहुत समीप हैं। जब मनुष्य आत्मदर्शी हो जाता है, यह गाय उसकी सेवा में स्वयं उपस्थित हो जाती है और वह जो कुछ चाहे केवल अपने विचार से ही सब कुछ कर सकता है। आत्मा सारी शक्तियों का भण्डार है आत्मदर्शी की संकल्प शक्ति में वह बल है कि यदि वह चाहे तो पृथ्वी और आकाश के तख्तों को पलट सकता है। मनुष्य के सारे भावों की जड़ मन में है। मन जब तक संसार की सामग्रियों में फंसा हुआ बहिरमुखी बना रहता है उस समय तक कामधेनु गाय उसको नहीं मिल सकती। इसके लिये अन्तर मुखी वृति का होना आवश्यक है, ताकि मन में वैराग्य उत्पन्न हो। मनुष्य प्रकृति के पदार्थों में न उलझे। उसका रूप और अपना रूप जानकर दुनियां के आधार पर न रहे बल्कि उसका आधार आत्मा बन जाये। निज स्वरूप में उसकी स्थिति हो। उस समय उसके लिये कुछ दुर्लभ नहीं है। इसी स्वरूप के ज्ञान को कामधेनु कहते है। इसी को कल्पद्रुम और कल्पवृक्ष भी कहते है। नाम और आकृति

जैसी चाहो रख लो। प्रायः लोग असलियत को नहीं समझते, क्योंकि स्थूल बुद्धि वालों को सूक्ष्म वस्तु की उस समय तक समझ नहीं आती जब तक कि उनको स्थूल रूप में वर्णन न किया जाय। यही कारण है कि कवि बहुधा सूक्ष्म विषय को अलंकार के रूप में वर्णन करते हैं। जब उसका रूपक बांध दिया जाता है तो फिर सबको कुछ न कुछ समझ आ जाती है।

जमदग्नि ने प्रश्न किया कि यह सब ठीक है किंतु आत्मदर्शी ऋषि किसी की हानि नहीं करते। उनको जो चाहे कष्ट दिया जाय मगर आपकी बातों से संशय होता है। कि आपके ब्रह्म ज्ञानी होते हुये भी आपकी संकल्प शक्ति रूपी कामधेनु ने विश्वामित्र को बार-बार पराजय किया। इसमें क्या भेद है?

वशिष्ठ जी बोले—यह सब ठीक है। मैंने विश्वामित्र को कभी हानि नहीं पहुँचाना चाहा। उनकी क्षति स्वय हो गई। उन्होंने सुन सुनाकर यह परिणाम निकाल लिया था कि कामधेनु गाय कोई स्थूल रूप का पशु है और चाहते थे कि उसको मुझसे छीन लें। उनकी विरोध की धार मन से निकली और मेरे मन से टकराई। चूँकि विश्वामित्र का मन बुरे भावों का भन्डार बन रहा था, इसलिये जब उसके भाव मेरे मन से मिले उनको स्वयं शक्ति मिल गई और उन्होंने ही लौटकर इनको पराजय किया और अपने ही हथियार से मारे गये। आप सब लोग जानते हो कि यह प्रपन्च पुरुष और प्रकृति के मेल से होता है। यह दो हैं और इस कारण इनके सम्बन्ध से जो कुछ उत्पन्न होगा वह भी दो प्रकार के रूप वाला होगा। स्त्री-पुरुष और रात-दिन, ब्रह्म

और माया, सुख और दुख, यह साथ-साथ रहने वाले हैं। जहां एक होगा वहां दूसरा भी होगा, क्यों कि प्रपन्च दो से खाली नहीं रहता। जहां संकल्प है वहाँ विकल्प अवश्य होगा। संकल्प यदि देवता है तो विकल्प राक्षस है। यह दोनों ही चित्त की वृत्तियां है। यह सब में रहती हैं। ज्ञानी तो इनको अपना रूप नहीं जानता है, इसलिये वह दुखी अथवा सुखी हुआ करता है। यह दोनों प्रकार की वृत्तियाँ कामधेनु गाय के स्वांस हैं। जिनको तुम प्राण व अपान भी कह सकते हो।

मैंने क्या किया ? मैंने कुछ भी नहीं किया। विश्वामित्र के विचार स्वयं कामधनु के भावों से टकराये और जब वह फिर विश्वामित्र के पास गये उनमें निर्बलता आ गई।

सूर्य के सम्मुख जब आतशी शीशा रखा जाता है सूर्य उसको नहीं जलाता। वह स्वयं ही सूरज की किरणों से भभक उठता है। इसी प्रकार उस मनुष्य में जो कुछ मैल व गन्दगी होती है जलकर राख हो जाती है।

ऐ ऋषियों ! तुम मुझ पर किसी प्रकार का लांछन न लगाओ। जिसका जैसा अधिकार है वह आप सृष्टि से वैसे ही फल लेता है। अज्ञानी मूर्ख ईश्वर को कर्त्ता-धर्ता मानता है। ईश्वर तो निर्लेप है वह न किसी को सुख देता है और न किसी को दुख देता है, क्योंकि उसमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती। मगर जीवों के कर्म ईश्वरीय नियम से टकराते हैं उनको अपने आप फल मिलता रहता है। यह सिद्धान्त है कि जो जैसा करेगा वैसा पावेगा। इसमें ईश्वर का क्या अपराध है। अपराध तो जीवों के कर्म का है। ईश्वर न किसी की हानि करता है और न किसी को लाभ

पहुँचाता है। जो जैसा हैं ईश्वर के समीप होने से उसको वैसा ही फल मिलता रहता है। कुरुप और सुरूप दोनों ही प्रकार के लोग दर्पण के सामने खड़े होते हैं। कुरुप का प्रतिबिम्ब बुरा और सुरूप का अच्छा पड़ता हैं। यह यों ही होता है। इसमें दर्पण का क्या दोष है। उसमें अपनी कोई इच्छा नहीं है। जैसा चाहो अपना प्रतिबिम्ब देख लो। यदि हँसते हो तो हँसता हुआ प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। यदि रोते हो तो रोती हुई सूरत दिखाई देगी। यदि इसमें कोई व्यक्ति दर्पण पर आरोप लगावे तो समझ लेना चाहिये कि उसको सिद्धान्त का पता नहीं है। यही दशा साधू की भी है। तुम जानते हो कि जितने शरीर धारी है विराट पुरुष के पुत्र होने के कारण उनमें संकल्प और विकल्प की शक्ति रहती है। साधू न बुरा करता है न भला करता है। अच्छे लोग जो साधू के सत्संग में जाते हैं उनकी दुर्भावनायें उभर खड़ी होती हैं, क्यों कि साधू ईश्वर के पुत्र हैं। उनमें भी ईश्वर के जैसे प्रभाव होते हैं। साधारणतया लोग यह कहते हैं कि साधू के दाहिनी ओर प्राणियों के शुभ कर्मो फल और बाई ओर अशुभ कर्मों के फल रहते हैं। अच्छे लोग श्रद्धा के साथ दर्शन करने पर अच्छे फल के भागी होते हैं। बुरे लोग अश्रद्धा के साथ देखने से बुरे फल पाते हैं। इसी कारण से वर्जित किया जाता है कि जब तक तुम में श्रद्धा न हो किसी साधू के पास न जाओ। इनमें भी दर्पण जैसा गुण है। दर्पण मनुष्य के रूप को प्रकाशित कर देता है यह तुम स्वय —

अनुभव करके देख सकते हैं।

इसी प्रकार साधू के पास जाने से अशुभ कर्मो को गतिमान होने का भय रहता है। साधू न किसी के मित्र हैं न

शत्रु हैं। जो उनको मित्र समझते हैं वह भी गलती पर हैं। और जो उनको शत्रु जानते हैं वह भी भूले हुये है, क्योंकि मित्र वही होता है जो किसी का शत्रु हो और शत्रु वही होता है जो किसी का मित्र हो। मित्रता, शत्रता, राग, द्वेष साथ-साथ रहते हैं। समदर्शी ज्ञानी इन दोनों से परे है। अब आप विचार करो कि विश्वामित्र को मैंने परेशान किया अथवा अपने विचार और दुर्भावनाओं के शिकार हुये। उनकी भावनायें राक्षसी थीं कामधेनु के भावों से मिलकर सहस्त्रों और लाखों असुर और दैत्य, जो वास्तव में मन की वृत्तियाँ थी, उत्पन्न हो गये और ऋषी को व्याकुल कर दिया और वह हो गये। उनका दुखी होना अनिवार्य था, नहीं तो उनके कर्म कैसे कटते।

गौत्तम्न ने प्रश्न किया, प्रभु ! आपने कर्म के कटने की बात अच्छी कहीं। तनिक इसकी भी व्याख्या कर दीजिये ताकि कोई भ्रम व संशय न उत्पन्न हो।'

वशिष्ठ जी खिलखिलाकर हँसे। आपका प्रश्न बहुत अच्छा हैं। यह एक रहस्य है जो सचमुच भारत अधिकारो के बताने के योग्य है। तुमको याद होगा कि मैंने अभो कहा है कि सत्सँग का बल पुरुषार्थ से बड़ा होता है। पुरुषार्थ में तो मनुष्य का अहंकार (अहम् भाव) सम्मिलित रहता है जो उसको असली ध्येय के प्राप्त करने में बाधक होता है। सत्सँग सत् का संग रहता है जो संस्कार रूप से मन में स्थित होकर अवसर पाकर अपना काम कर लेता है। जो व्यक्ति गंगा में स्नान करेगा, पहले गंगा के जल को उसके शरीर के मैल के साथ रगड़ करनी पड़ेगी। फिर कुछ समय के पश्चात जब मैल उतर जायगा तब शरीर निर्मल हो जायगा। इसी प्रकार

जब कोई व्यक्ति साधू के साथ लड़ाई करता है उसकी बुरी भावनायें उभर कर खड़ी होती हैं और उसको शुभ वासनाओं व शुभ कर्मों की ओर शीघ्र आकर्षित नहीं होने देती। वह भाँति-भाँति के उत्पात करता हैं, मगर धीरे-धीरे जिस प्रकार उन उत्पातों की धारें हल्की होती जायगी, उसमें पश्चाताप उत्पन्न होगा। खेंचातानी और पश्चाताप ही कर्मों को दग्ध करते हैं और इसके अधीन एक समय ऐसा आ जाता कि जब मनुष्य रगड़ा खाते-खाते तनिक सम्भल जाता है। फिर उसमें सच्चाई की फुरणा होने लगती है और वह ठिकाने आ जाता है। सूर्य के मिलाप से अग्नि उत्पादक शीशे के गोल में क्षोभ होना कारण कहा गया है। साधू से झगड़ा भला, साकित सँग न मेल। तुम मेरी पहली बात को सुनकर यह परिणाम न निकालना कि मेरे बचन में पारस्परिक विरोध है। नहीं! मेरे या ईश्वर के समीप जाने से उभर खड़े होते हैं। उनमें जोश और क्षोभ आता है और फल मिलने लगता है और फल मिलने से फिर सम्भव है कि शुभ कर्म अपना प्रभाव उत्पन्न करें। यही दशा महर्षि विश्वामित्र की भी हुई है।

कश्यप ऋषि बोले 'यह प्रश्नोत्तर वस्तुतः बड़े चित्ताकर्षक थे। अब आप फिर असल कथा की ओर चलें'

वशिष्ठ ने कथा का क्रम इस प्रकार आरम्भ किया: विश्वामित्र इन सब बातों को पहले ही से जानते होते तो इन को इतना कष्ट न उठाना पड़ता। मगर यह भी क्या करते। कर्म का नियम अटल है ऐसा होने वाला ही था। उन्होंने मेरे साथ दाव पेच करने आरम्भ किये। आप जानते हैं मिटटी का ढेला चट्टान से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

चट्टान अपने आप उस ढेले की परवाह नही करता उसकी स्थिति ही क्या होती है जिसकी टट्टान को परवाह होती है। वह अपनी पूरी शक्ति से चटटान पर आक्रमणकारी हुआ और आप उससे टक्कर खाकर नष्ट हो गया। मुझको इनके दांव- पेचों का तनिक भी ख्याल नहीं था। उन्होंने मेरे लड़कों की हत्या कर दी। अपने मन में समझ बैठे थे कि उस उपाय से मुझको ब्रह्मऋषि कहने के लिये विवश कर सकेंगे, मगर मैं जिस प्रकार न किसी की खुशामद से प्रसन्न होता हूँ उसी तरह न किसी की निन्दा व शत्रुता को बुरा मानता हूं। मैं जैसा था वैसा ही रहा मगर उनकी स्थिति बदलती गई और धीरे-धीरे कुछ के कुछ बन गये।

इनकी जो दशा हुई वह स्वयं उन्होंने अपनी कथा में सुनादी। आप किंचित मुझको इसके दुहराने का कष्ट न दें। हाँ ! मैं इतना कहना आवश्यक समझता हूँ कि जब उनके मन में पश्चाताप हुआ, यह अति दुखी हुये। मन में दुख उठने से इनके अशुभ कर्म आप ही आप दग्ध हो गये, चूँकि उनके मन से मेरा ध्यान कभी दूर नहीं हुआ, मेरा ही ध्यान बुरे भले प्रकार से इनके मन में स्थित हो गया। जब आप से आप उनके बुरे भाव दब गये, मेरे समदर्शी भाव का उभार होने लगा और इनको आप ही आप आत्मा का दर्शन हो गया। उन्होंने जो मानसिक रूप देखा था, वह स्वयं उनका अपना ही विचार था। जिस प्रकार उनको दर्शन हुआ वह शरीर धारी सूक्ष्म शरीर में रहने वाला आत्मा ही था, जिसका गृह यह शरीर है, जिसमें दस इन्द्रियाँ दस खिड़कियां हैं और पच कोष जिसकी पांच कोठरियाँ हैं, जिसमें उन्होंने मेरे लड़कों के रक्त की बूंदें छिड़की थी और वह अपवित्र हो गये थे और जिस दुर्घटना का उनको रह-रह कर पछतावा हुआ करता

था। जिस रात्रि को उन्होंने स्वप्नावस्था में आत्मा के सूक्ष्म शरीर का दर्शन किया। उसके प्रातः काल यह दीन दुखी होकर मेरे पास आये और मैंने उनको असलियत समझा दी।

जिस रात्रि को उनको आत्मा का साक्षात्कार हुआ मुझ को भी उनका ध्यान था, क्योंकि यह बार-बार मुझको याद कर रहे थे। इनके मन की धारें निकल कर मेरे मन से टकराती थीं और मझको इनके आन्तरिक दशा का स्मरण करती थी। यह नियम है कि जो जिसको याद करता है वह भी उसको याद करता है।

तुलसी कंवलन जल बसे, रवि, शशि बसे अकाश।
जो जाके मन में बसे, सो ताही के पास॥

जो ईश्वर का स्मरण करते हैं, ईश्वर उनका भी स्मरण करता है। जो गुरु का नाम जपते रहते हैं, गुरु भी उनका ध्यान रखता है। यह पारस्परिक सम्बन्ध हैं। ऐसा ही हुआ करता है।

अभी प्रातः काल का तारा निकल ही रहा था कि मेरी स्त्री अरुनधती जाग उठी और चमकते हुये तारे को देखकर मुझसे कहने लगी—'प्राणनाथ! क्या संसार में कोई ऐसा पुरुष भी है जिसके प्रताप का तारा इस प्रकार संसार में चमकता है।' मुझको चूँकि विश्वामित्र का ध्यान था, मेरे मुँह से निकल गया—'सुन्दरी! और तो कोई नहीं है। हां! विश्वामित्र ऋषी की कीर्ति में पूर्णमासो के चन्द्रमा की तरह चमक-दमक दृष्टि आती है।' वह बोली कि प्रभु! आप उन ऋषी की बड़ाई करते हैं। उन्होंने तो आपके पुत्रों तक को व्यर्थ निरपराध मार डाला। यह उनकी तपस्या की दणा है। मैंने कहा कि तू इस समय व्यक्तित्व को लेकर बातचीत

कर रही है। पुत्रों के मरने का विचार त्याग करके देख। ऐसा बल और पराक्रम जैसा कि विश्वामित्र में है किसमें है उन्होंने अपने विचार से दूसरा ब्रह्माण्ड बना लिया। आज वह जिसको चाहें अपने अधीन बना सकते हैं। सबको उनका भय रहता है और सब उनका सम्मान करते हैं। मरना-जीना तो साधारण बात है। एक जन्मदाता है। तो दूसरा मरता है। कौन किसके लड़के कौन किसका बाप! इस विचार को सदा के लिये मन से दूर करदे। और फिर तुमको आप ही विश्वास हो जायगा कि बिश्वामित्र कैसे पराक्रमी और पुरुषार्थी हैं।

विश्वामित्र मेरे झोंपड़े के एक कोने में दबके हुये इन बातों को सुन रहे थे। उनके दिल को चोट लगी। वह ख्याल करने लगे। 'मैं कैसा पापी हूँ कि व्यर्थ ही इसके पुत्रों को मार डाला। यह फिर भी शुभचिन्तक है। मुँह पर मेरी इस ने बुराई नही की। पीठ पीछे भी प्रशंसा करता है।' यह यह सोच और समझ कर उन्होंने तत्काल अपने देह पर से सब क्षत्रियों के अस्त्र-शस्त्र, जिनसे ये सदा सुसज्जित रहा करते थे, उतार कर फैक दिये और बिना आज्ञा के रोते हुये मेरे पास आ गये। मैंने कहा—'आइये ब्रह्मऋषि विश्वामित्र! यह सुनकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। कहने लगा —'प्रभो! मैं जब कभी आपके पास आया आपने राजऋषि कहा। मैंने अपनी दुर्भावनाओं से उत्तेजित होकर आपको नाना प्रकार की क्षति पहुँचायी। आज इस विशेष कृपा का क्या कारण है? मैंने हँसकर उत्तर दिया—'भगवन! पहले आपमें राज ऋषी के गुण थे। आप सदा शस्त्रों से सजे रहते थे। मन में राजाओं की भाँति अहंकार था। आज देखने से ज्ञात होता है

कि वह अहंकार दूर हो गया। आत्मा का दर्शन मिल गया। अब आप रजोगुण के ऊपर आ गये। सब अहकारी भावनायें दब गई। जिनमें यह लक्षण हों, वह ब्रह्मऋषि कहलाते हैं। यहीं कारण है कि मैंने आपको ब्रह्म ऋषी कहा है। आप स्वयं सोचें जो जैसा होता है वैसा ही कहा जाता है।'

विश्वामित्र मेरे पैरों पर गिर पड़े। मुझसे अपराधों की क्षमा मांगने लगे। मैंने उनको पहले ही से क्षमा कर रखा था ऐ ऋषियों! यह विश्वामित्र के ब्रह्मऋषि कहलाने की कथा। इतना कहकर वशिष्ठ जी चुप हो गये और सब उनकी कथा को सुनकर प्रसन्न हुये।

•

क्या फिकर मरने का उसको, प्रेम ने मारा जिसे।
क्या फिकर तनने का उसको, सत्गुरु तारा जिसे॥

जान की बाजी लगाकर, इस गली में आये थे।
क्या रहा अब पास इसके, सर को है हारा जिसे॥

बात करने वालों को, इसका मजा आता नहीं।
पा सकें हरगिज नहीं, सिकन्दर व दारा जिसे॥

मुर्शिदे कामिल का दामन, जिसने पकड़ा दिल से है।
डूब वह सकता नहीं, इसने उभारा है जिसे॥

फकीरचन्द जी महाराज जी

साँई के सौ ख्याल

(गताँक से आगे)

एक ही आदेश न होना चाहिये। मेरी पत्नी दुःखी रहा करती थी और वह इस लिये कि परिवार के लोग उसे ताना दिया करते थे। उनसे दुःखी हो कर दाता दयाल जी को एक पत्र लिखा, "पति ने लगभग छोड़ रक्खा है। कुटुम्बी ताना देकर दुःखी करते हैं। अब आपके अतिरिक्त कौन है? आपकी ओर मेरी दृष्टि है। दया कीजिये। 'दाता रहस्य ज्ञाता थे। उसे उत्तर दिया, 'धन-सम्पत्ति, पति और सन्तान सब मिलेंगे? तनिक धीरज की आवश्यकता है। कोई तुम को एक ताना दे तो तुम उसे सोलह सुनाया करो।" अतः उसने उसका साधन किया और वह सफल रहीं। मेरे मिलने पर परिवार वालों ने मेरी पत्नी की दुर्व्यवहार की शिकायत की। मैंने अनभिज्ञता प्रकट की और जब मुझे पता लगा कि दाता दयाल जो ने आदेश दे रक्खा है तो मैंने उनसे प्रार्थना की "महाराज! इसमें तो आपका अपमान है। वर्णन किया कि मैं अपने आदर मान की परवाह नहीं करता। संसार मुझे अपमानित करता है करे। मैं प्रत्येक मूल्य पर तुम्हारे घर में सुख-शान्ति चाहता हूँ" आप अनुमान कीजिये कि

गुरु कैसा होना चाहिये ?

सुख देवें दुख को हरें, दूर करें अपराध।
कहें कबीर वह कब मिले, परम सनेही साध ॥

पुस्तकें जड़ हैं, गुरु चेतन्य है। ८८ ।

पुस्तकें ध्येय तथा लक्ष्य का ठीक पता नहीं देतीं। इसलिये पूर्ण पुरुष की आवश्यकता है, मित्रो ! ऐसा अवसर आ जाता है कि प्राणी को लड़ना भी पड़ता है। वहां यह भक्ती जो आपको सिखाई जाती है क्या काम देगी। अतः जो गुरु कहें वह हितकारी मानो। जो गुरु बतायें वही चित्त धर ध्यानो। वही सीधा मार्ग बता सकते हैं- एक समय की बात है कि मेरे छोटे भाई राय साहब सुरेन्द्रनाथ अफ्रीका में रहते समय मांसाहारी हो गये मुझे इनकी इस कुटेव पर बहुत क्रोध आया। अतः मैंने दाता से इनको शिकायत की। उत्तर मिला तुमको इस बात से क्या प्रयोजन है। सावधान ! उससे न कहो कि वह मांस न खाये। मांस न खाने का आदेश तुम्हारे लिये है उसके लिये नहीं है। इसके पश्चात मैं चुपका रहा और अब बात समझ में आ गई।

मत देख पराये औगुन, क्यों पाप बढ़ाये छिन-छिन।

दौड़-धूप। ८९

हमारी समस्त दौड़ धूप का मन्तव्य केवल इतना है कि चित्त की वृत्ति निर्भय, अडोल, अचल और निरबैर रहे और बस।

मदिरा पान और माँस भक्षण । ६०

मेरी पुत्री प्रेम प्यारी का पति मांस खाता था । मेरे पास आकर उसने इस बारे में शिकायत की और यह भी कहा कि उसकी सास भी मांस खाती है । पूछने लगी क्या करूं ? मैंने उसको सम्मति दी कि वह उन्हें घर पर स्वयं मांस पकाकर खिलाया करे । जिससे कि उसके पतिदेव होटल में जहाँ कभी-कभी माँस खाते थे न खायें । हाँ ! वह स्वय न खाये, उसे पाप दोष न लगेगा । अतः उसने वैसा ही किया और दो माह पश्चात उसके पति ने मांस खाना छोड़ दिया । परिणाम यह निकला कि घृणा को घृणा से परास्त नहीं किया जाता, प्रेम से किया जाता है । लोगों ने केवल मांस न खाने और मदिरा को न पीने को ही सब कुछ समझ रखा है । यह बड़ी अच्छी बात है कि इनसे दूर रहा जाये । किन्तु वास्तव में हमें उस अवस्था को (अडोल पने को) जिसके सम्बन्ध में मैंने अभी कहा है कि प्राप्त करना है ।

त्रुटि पूर्ण समझ । ६१

स्मरण रखो ! गुरु तुमसे श्रेष्ठ जानते हैं कि कौनसी मत तुम्हारे लिये सुगम व सरल रहेगी । नाम की गलत समझने राधास्वामी मत वालो को उन्मत बना दिया । स्त्रियां,पतियां और बच्चों को छोड़ डरे और गुरुद्वारों में जाती हैं । इसलिये घर में लड़ाई झगड़े रहते हैं । यह कहाँ का धर्म और बन्ध है ? मुझे इस समय किसी घराने का विचार आ गया । मैं उसका नाम नहीं बताना चाहता । उस घर में पुरुष बीमार था । और उसे अधरंग का रोग था । इस दशा में पति को छोड़कर पत्नी व्यास चली गई । पुरुष को टट्टी पेशाब कराने

वाला कोई न रहा। धिक्कार है ऐसे अनुयाइयों पर। क्या राधास्वामी मत की शिक्षा यही सिखाती है कि अपने पति को सेवा छोड़कर गुरुद्वारे जाओ? इनको ज्ञात नहीं कि सांसारिक जीवन की देख रेख कितनी अनिवार्य है।

नाम महात्म। ९२

जिसने नाम लिया उसको सुखी होना चाहिये। यदि सुखी है तो यह समझना चाहिये कि या तो नाम लेने वाला अनजान है या देने वाला, या दोनों ही अधूरे अज्ञानी हैं। वह नाम ही क्या जिसके नाम लेने से मानव सुखी न हो जाय।

निवृति मार्ग। ९३

राधास्वामी मार्ग निवृत्ति मार्ग है। यह विशेष-२ मनुष्यों के लिये था। अब इसको साधारण बना दिया गया है। यह अच्छी बात नहीं। प्रवृत्ति मार्ग वालों को निवृत्ति मार्ग की समझ देर से आती है।

ईश्वर दर्शन तथा कर्ता पुरुष का रूल। ९४

मेरे एक मित्र का भतीजा ज्ञानेश्वर जिसकी आयु १५-१६ वर्ष की थी मेरे पास आया और कहने लगा कि 'मुझे ईश्वर के दर्शन कराओ' मैंने उत्तर दिया, 'अवश्य कराऊंगा परन्तु मेरी आज्ञा माननी होगी। वह यह हैं कि ८-९ साल तक नाभि से नीचे किसी अंग को न देखो। तत्पश्चात ईश्वर के दर्शन हो जायेंगे' मेरा संकेत समझो कि मैं क्या कह रहा हूं? पहले अपने चरित्र को बनाना आवश्यक है। यह अनिवार्य है कि छोटी आयु में बच्चे अपना ब्रह्मचर्य पालन

करें और यदि ब्रह्मचर्य गिर गया फिर या तो साधुजन अथवा डाक्टर वैद्य लूटेंगे और अशान्ति भाग्य में आयेगी। यह स्वर्ण शब्द है जो मैं कह रहा हूँ। इन्हें सब ध्यान में रखो। अधिक विषय विकार और भोग विलास का जीवन मत बिताओ। शक्ति इन्द्रियों द्वारा नष्ट होकर तुमको निर्बल कर देगी और तुम अशान्त हो जाओगे। शान्ति शक्तिशाली बनने में है मैं स्वयं बारह वर्ष बसेर बगदाद में न रहता तो मैं इस समय श्मशान भूमि में होता।

कर्त्ता पुरुष का खेल। ६५

(१) सुनो! हैदराबाद में कोई अध्यापक है। उनको धर्मपत्नी को जिसका विवाह हुये १२ वर्ष हुये कोई भूत प्रेत तंग किया करता था। जब मेरा उधर जाना हुआ तो वह मुझ तक पहुँचे। चूँकि मैं प्राकृतिक नियम को अधिक सीमा तक जानता हूँ मैंने उनको अपना फोटो दिया और कहा कि जिस समय वह भूत आवे तो मेरा फोटो सामने रख लिया जावे। अतः उन्होंने ऐसा ही किया। भूत बोला में नहीं जानता कौन दयाल फकीर है? कहते हैं कि फिर उस स्त्री के पति, सास और भाई की उपस्थिति में मैं स्वयं वहां पहुँचा और भूत को एक झाड़ लेकर मारा। भूत सामने वाले इमली के पेड़ पर चढ़ गया। मैं दयाल फकीर भी पीछे-पीछे इमली के पेड़ पर चढ़ गया और मैंने उस भूत को इतना मारा कि अब वह वहाँ नहीं आता और उस स्त्री को उससे छुटकारा मिल गया।

मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि मैं इस घटना से नितान्त अनभिज्ञ हूं हां मैंने इस स्त्री को केवल एक विचार दिया था,

उस विचार और संकल्प को उसने अपने मस्तिष्क में रखा और उसी संकल्प ने दयाल फकीर को प्रकट किया जिसने उससे मुक्ति दिलाई और सहायता की।

[२] दूसरी घटना श्री यादराम अध्यापक 'टप्पल' की है जो कहते हैं उन्होंने मुझे एक कबीर पन्थी साधू के साथ यमुना के खादर में देखा और कहा—'आपका यहाँ का प्रोग्राम तो था नहीं कैसे पधारे ? और मैंने उन्हें उत्तर दिया कि मैं सर्वव्यापक सर्व अस्थाना हूँ। जहां कोई स्मरण कर वहां पहुँच जाता हूं। तुम यहां कैसे फिर रहे हो ? घर क्यों नहीं जाते ? तुरन्त ही घर जाओ। किंतु मुझे इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है। वास्तव में बात यों है कि किसी कारण वश यादराम जी क्रोध में आकर घर से चले गये। उनकी पत्नी बहुत सुशील है उसने सोचा कि पतिदेव क्रोध में आकर घर से चले गये हैं। उसने मेरे रूप में मेरा फोटो सामने रखकर मालिक से प्रार्थना करने लगी। मैं समझता हूँ कि उसके दृढ़ संकल्प और विचार की एकाग्रता ने मेरा रूप धारण करके यादराम जी से यमुना खादर में मिलाप कराया और उन्हें आदेश दिया कि घर वापिस जाओ।

[३] तीसरी घटना श्री बनारसी लाल अलीगढ़ की है। जो उनकी गर्दन बिजली के द्वारा चलती हुई मशीन के पटे के नीचे आ गई थी और वह अचेत हो गये थे। वह कहते हैं कि मैं वहां पहुँचा और उनका हाथ पकड़ कर मशीन से बाहर उठाकर फेंक दिया। मुझे इस घटना का कोई पता नहीं। बात यह है कि वह और उनकी धर्म पत्नी मुझसे मिलने, जबकि मैं दयाल धाम में ठहरा हुआ था गये थे। चलती बार

मैंने उनकी धर्मपत्नी को आशीर्वाद दिया था कि पुत्री सुहागवती रहो। यह इन दोनों के अपने ही भाव का फल है। जिसने मेरा रूप धारण कर इनकी सहायता की।

[४] एक समय की बात है मैं कुन्दियां जो एन० आर० रेलवे पाकिस्तान का स्टेशन है वहाँ पर सहायक स्टेशन मास्टर था। एक अन्धेरी रात को एक बड़ी भयंकर आँधी चली। कुछ दृष्टिगोचर नही होता था। तीन गाड़ियों का एक ही समय क्रास था। ऐसी दशा में भयभीत हुआ कि कहीं गाड़ियां आपस में न टकरा जाँय। यद्यपि मन में गुरु का ध्यान था किंतु उसी घबराहट में अचेत हो गया। तनिक देर पश्चात मुझे चेतनता आई। उस समय आँधी बन्द हो चुकी थी और मैंने तीनों गाड़ियों को अपनी पटरियों पर खड़ा देखा मैंने चकित होकर पूछा कि तीनों गाड़ियाँ सकुशल इस स्थान पर कैसे आ पहुँची? जब कर्मचारियों ने उत्तर दिया कि "आप स्वयं इन गाड़ियों को पाइलट करके यहाँ लाये हैं। और हमने आपको यहाँ पाइलट करते स्वयं देखा है"। मैं और भी चकित हुआ और कहने लगा कि धन्य है तेरा खेल।

(५) हमारे गुरु भाई ला० बाबूराम सकौना पटवारी जाडौल जिला बुलन्दशहर के हैं। उनके मन में इच्छा हुई कि शिवरात्रि पर दयाल धाम में मेरा सत्संग सुनो। किंतु पैसा पास नहीं था आते भी तो कैसे आते। इसी उधेड़-बुन में रात्रि को स्वप्न में क्या देखते हैं कि दाता दयाल जी आये हुये हैं और कहते हैं कि चिन्ता किस बात की? अपने रसोई घर के निकट खोदो रुपया गड़ा हुआ है। मिल जायगा।

उन्होंने वहां खोदा तो ४०) रुपये मिले। वह प्रसन्नता पूर्वक दयाल धाम आये और यह घटना सुनाई।

[६] हैदराबाद प्रान्त में किसी सज्जन को मेरा सत्संग सुनने की बड़ी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई, परन्तु निर्धनता के कारण असमर्थ था। इसी विचार में रात को सो गया। प्रातः क्या देखता है कि उसके किसी पूर्वज ने ६०) रुपये देते हुये कहा कि तुम हैदराबाद जा रहे हो, हमारे लिये अमुक वस्तु लेते आना। उसने मालिक को धन्यवाद दिया और तुरन्त ही हैदराबाद को चल दिया। दो-तीन दिन तक मेरा सत्संग सुना। उसमें से १५) रुपये घर पहुँचते-पहुँचते व्यय हो गये थे। बेचारा ६० रुपये की वस्तु को ४५ रुपये में कैसे खरीदे? बड़े असमन्जस में था कि पूर्वज पधारे और अपनी वस्तु मांगी। कहें तो क्या कहें? क्षमा याचना करने लगा। इस पर वह लाल पीले पड़े और अपना रुपया वापिस माँगा। उसने अपनी कोट की जेब में से वह नोट लाकर उनके सामने रख दिए। उन्होंने गिने तो वह ६०] रुपए निकले। इस पर वह और देखने वाले बड़े चकित हुये और मुझे मालिक को धन्यवाद दिया। बताओ मैंने क्या किया?

[७] करीमनगर में एक सज्जन को अपने कार्य-व्यवसाय में सफलता नहीं होती थी। उसने मुझसे सम्मति ली। मैंने उसे अपना हित और मति देते हुए कहा कि तुम दयाल एन्ड को० Dayal & Co., के नाम से कोई काम चालू करो। उसने उसमें दो आने की मेरी भी पत्ती रक्खी। उसका काम चल निकला। वह कहता है कि १२०० रुपए मेरे नाम का उसमें मुनाफा निकलता है। वह मैं ले लूं अब बताओ मैंने तो कुछ किया नहीं। करने वाला कोई और है। मैं उस रुपए

को कैसे और क्यों ले लूँ ? मैंने कहा —भाई इसे परमार्थ के कामों में लगा दे।

गुरु नहीं भूखा तेरे धन का।
उन पर धन है राम रतन का ॥
पर तेरा उपकार करावें।
भूखे नंगे को दिलवावें ॥

ना कुछ किया न कर सका, न करने योग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भए फकीर फकीर ॥

इन सब बातों तथा सच्ची घटनाओं से यह स्पष्ट माना जाता है कि यह सब भाव, विचार, संकल्प तथा मन का खेल है। विचार बलिष्ठ और घना हो जाता है तो शरीर धारी बनकर कार्य सम्पूर्ण और सिद्ध करता है। यही कारण है कि शास्त्र इस जगत को सँकल्पमय, मनोमय और ब्रह्ममय कहते हैं।

चरित्रहीन । ६५

जिस नव युवक को भक्ति करते देखो तो समझ लो कि १०० में से ८०% मुख्य-मुख्य [विभूतियां] और होती हैं उन्हें वह चरित्र हीन हो गया है। मेरा एक मित्र अपने पुत्र की बहुत प्रशंसा करने लगा और कहने लगा कि वह बहुत भक्ति करता है। घर के अन्दर एक मन्दिर बना रक्खा है और उसे बाहर जाने की आवश्यकता नहीं होती। कृष्ण जी की मूर्ति रक्खी है। छैने, झांझ और खड़ताल बजाता है और आरती करता है। मैंने तुरन्त ही कह दिया कि 'मित्र! तेरा पुत्र चरित्रहीन हो गया।' उसने कहा, 'प्रमाण दीजिये।' मैंने उससे कहा, 'घर जाकर प्रसिद्ध कर दो कि एक पन्डित

योगीराज आये हुये हैं। और मनोकामना पूरी करते है।'' उसने ऐसा ही किया। ढाई महीने पश्चात उसका पुत्र मेरे पास आया और रोने लगा। मैंने कारण पूछा। कहने लगा दया करो। कैसी दया चाहिये। मैंने प्रश्न किया? 'कहने लगा, हम क्षत्री हैं दूसरे कुल की लड़की मेरे पास आया करती है। मैं उसके प्रेम में फँस गया हूँ। अभी उसे भ्रष्ट तो किया नहीं। मैंने उससे पूछा, 'उससे विवाह करना चाहते हो? उत्तर हां मिला। मैंने उससे कहा, 'अभी पढ़ो' लिखो फिर विवाह करना। तत्पश्चात तुम्हारे साथ विवाह करूँगा। तत्पश्चात उसका पिता मुझसे मिला, मैंने समस्त वृतान्त सुनाया और कह दिया कि पुत्र को छात्रावास में भेज दे। अतः उसने ऐसा ही किया।

दया-भाव । ९६

मित्रो ! मेरे सत्संग कराने का ध्येय केवल आप लोगों की बहतरी और भलाई है। वरन मुझे इससे क्या लेना है मेरा एक मुख्य मिशन है दया का ! दया किया करता हूं। मैं राधा स्वामी दयाल का रूप हूं। इसलिये दया करना मेरा स्वभाव है मैं आप लोगों को बिना मूल्य के सच्चाई अर्थात रहस्य बताता रहता हूँ। इसलिये सावधान होकर मेरी बातों को सुनो, गुनो और अमल करो।

अमल से जिन्दगी बनती है जन्नत भी जहन्नुम भी।
यह खाकी अपनी फितरत में न नूरी है न नारी है।।

बाल विवाह से हानि । ९७

मेरा अपना विवाह छोटी आयु में हो गया। यद्यपि मैं कभी पर स्त्री के पास नहीं गया। बाल्य अवस्था के विवाह ने मेरे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाला। मैं अपने निज अनुभव के आधार पर कहता हूं कि कच्ची आयु में बच्चों का

विवह का अभिलाषी हो ऐसी दशा में यह श्रेष्ठ है कि उनका विवाह विधि पूर्वक कर दिया जाय।

किसी के हो रहो या किसी को अपना बना लो। ९८

आजकल सत्सँग भी एक विषय बन चुका है। वरन क्या कारण है कि एक बात समझली जाय और वह फलदायक न हो। मेरे पास गुरु है, कुन्जी है जो मैं आप लोगों को बताता रहता हूं, देता रहता हूँ और अपने जीवन के निज अनुभवों को सुनाता रहता हूँ। मेरी यह टेव नहीं कि दूसरों की सुनी सुनाई बात आप तक पहुँचाऊँ। अपनी बीती आप सुनावा हूँ, लाभ उठाना आपका काम है।

न कुछ हम हँस के सीखे हैं, न कुछ हम रोके सीखे हैं।
जो कुछ थोड़ा सा सीखे हैं, किसी के होके सीखे हैं।।

तप तपस्या। ९९

जीवन में वह व्यक्ति सफल होता हैं जो तप करता है। तप का दूसरा नाम तपस्या है। तपस्या कहते हैं दृढ़ संकल्प शक्ति से किसी काय के पीछे लगे रहने को। ऐसा करने से संकल्प शक्ति बढ़ जाती है और अति उन्नति करती है। मैं यह कार्य स्वयं हुजूर साँवले शाह के आदेशानुसार करता हूँ। उनके जो सत्सगी निन्दा, घृणा अथवा दूसरी बुराईयों से लगे हुये हैं। वह वास्तव में उनके सत्सँगी नहीं।

शान्ती। १००

भजन से आनन्द मिल सकता है। शान्ती नहीं मिलेगी। शान्ती अनुभव, शुद्ध विचार अथवा ज्ञान से मिलेगी। शिष्य अन अधिकारी हो तो पूर्ण गुरु उसे न मिल सकेगा। जहां माँग नहीं वहाँ पूर्ति कैसे होगी? जहाँ तक जात का प्रश्न है सच बोलो। सांसारिक व्यवहार का स्वयं अपना मार्ग खोज निकालो।

आप निराश न हों

आनन्दकन्द परमेश्वर की यह विशाल सृष्टि आनन्दमूलक है। सच्चिदानन्द भगवान ही सर्वत्र प्रकट हो रहे हैं। उन आनन्दघन का आनन्दमय ज्ञान प्रत्येक वस्तु से विकसित हो रहा है। भगवान अपने आनन्दमय स्वरूप का सर्वत्र प्रसार कर रहे हैं। जब इस जगत के निर्माण कर्ता का प्रधान गुण आनन्द का प्रसार करना है। तब संसार में आनन्द के अतिरिक्त अन्य क्या हो सकता है। प्रातःकाल हंसता हुआ सूर्य उदित होकर संसार को स्वर्ण रश्मियों से स्नान करा देता है, शीतल सुगन्धित वायु मस्ती बिखेरती फिरती है पक्षी वृन्द आनन्द से सने गीत गा-गा कर सृष्टि कर्ता की उत्कृष्ट कला का प्रकटीकरण करते हैं। विशाल नदियाँ कल-कल शब्द कर आनन्द बढ़ाती हैं। पुष्पों पर गुंजारते हुये मदमाते भ्रमर आनन्द के गीत सुनाकर हृदय शांत करते हैं। पृथ्वी का अणु अणु सुख, ऐक्य, समृद्धि और प्रेम की शक्ति को प्रवाहित कर रहा है। प्रत्येक वस्तु जीवन को स्थायी सफलता और पूर्ण विजय से विभूषित करने को प्रस्तुत है। ऐसी सुन्दर सृष्टि में जन्म पा लेना सचमुच बड़े भाग्य की बात है, सतत तप, पुण्य इत्यादि के उदाहरण स्वरूप यह दुर्लभ मानव जीवन इसलिये प्राप्त होता कि हम इससे पूर्ण आनन्द का उपभोग कर जन्म जन्म की साध पूरी कर सकें, फिर बतलाइये आप निराश क्यों हैं ?

निराशावाद उस महाभयंकर राक्षस के समान है जो मुंह फाड़े हमारे परम आनन्द जीवन के सर्वनाश की तलाश में रहता है जो हमारी समस्त शक्तियों का ह्रास किया करता है

जो हमें अध्यात्मिकपथ पर अग्रसर नहीं होने देता और जीवन के अन्धकारमय अंश हमारे सामने प्रस्तुत किया करता है। हमें पग-पग पर असफलता ही असफलता दिखाता है और विजय द्वार में प्रविष्ट नही होने देता।

इस बीमारी से ग्रस्त लोग उदास, खिन्न मुद्रा लिये घरों के कौने में पड़े दिन रात मक्खियाँ मारा करते है। ये व्यक्ति ऐसे चुम्बक है जो उदासी के विचार को निरन्तर अपनी ओर आकर्षित किया करते हैं और दुर्भाग्य की कुत्सित डरपोक विचार धारा में निमग्न रहा करते हैं। उन्हें चारो ओर कष्ट ही कष्ट नजर आते हैं। कभी यह, कभी वह, एक से एक भयंकर विपत्ति आती हुई दृष्टिगोचर होती है। वे जब बाते करते हैं तो अपनी यन्त्रणाओं और विपत्तियों का क्लेशपूर्ण अभद्र प्रसंग छेड़ा करते हैं। हर व्यक्ति से वे यही कहा करते हैं कि भाई हम क्या करें हम कम नसीब हैं, हमारा भाग्य फूटा हुआ है। देव हमारे विपरीत हैं हमारी किस्मत में विधि ने ठोकरों का ही विधान रक्खा तभी तो हमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर लज्जित और परेशान होना, अशान्त, क्षुब्ध और विक्षिप्त होना पड़ता है। उनकी चिन्तित मुख-मुद्रा देखने से विदित होता है मानों उन्होंने उस पदार्थ से गहरा सम्बन्ध स्थिर कर लिया हो, जो जीवन की सब मधुरता नष्ट कर रहा हो, उनके सोने जैसे जीवन का समस्त आनन्द छीन रहा हो, उन्नति के मार्ग को कष्टकाकीर्ण कर रहा हो, मानो समस्त संसार की दुःख विपत्ति उन्हीं के सिर पर आ पड़ी हो और उदासी की अन्धकार मय छाया ने उनके हृदय-पटल को काला बना दिया हो।

इसके विपरीत आशावाद मनुष्य के लिये अमृत तुल्य है।

को प्रकाश से, वनस्पति को सूर्य से लाभ होता है, उसी भाँति आशावाद की संजीवनी बूटी से मृत प्राय मनुष्य में जीवन-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। आशावाद वह दिव्य प्रकाश है जो हमारे जीवन को उत्तरोत्तर परिपुष्ट, समृद्धशाली और प्रगतिशील बनाता हैं। सुख, सौन्दर्य एवं सफलता की अलौकिक छटा से उसे विभूषित कर उसका पूर्ण विकास करता है। उसमें माधुर्य का संचार कर विघ्न, बाधा, दुःख, क्लेश और कठिनाईयों पर विजय प्राप्त करने वाली गुप्त मन-शक्ति जाग्रत करता है। आत्माकी शक्ति से देदीप्यमान आशावादी आशाका पल्ला पकड़े प्रलोभनों को रौंदता हुआ अग्रसर होता है। वह पथ-पथ पर विचलित नहीं होता। उसे कोई बात असम्भव प्रतीत नहीं होती, उसे कोई कार्य असम्भव नहीं जान पड़ता, उसे कोई पराजित नहीं कर सकता. संसार की कोई शक्ति नहीं दबा सकती, क्योंकि सब शक्तियों का विकास करने वाली 'आशा' की शक्ति सदैव उसकी आत्मा का तेजोमय करती रहती है।

संसार के कितने ही व्यक्ति अपने जीवन को उचित, श्रेष्ठ और श्रेय के मार्ग पर नहीं लगाते। वे किसी एक उद्देश्य को स्थिर नहीं करते न वे अपने मानसिक संकल्पों को इतना दृढ़ ही बनाते हैं कि अपने प्रश्नों में सफल हो सकें। सोचते कुछ हैं करते कुछ और हैं। काम किसी एक पदार्थ के लिये करते हैं, आशा किसी दूसरे की ही करते हैं। करील के वृक्ष बोकर आम खाने की अभिलाषा करते हैं। हाथ में लिये हुये कार्य के विपरीत मानसिक भाव रखने से हमें अपनी निर्दिष्ट वस्तु कदापि प्राप्त नहीं हो सकती, बल्कि हम इच्छित वस्तु से और भी दूर जापड़ते हैं। तभीतो हमें असफलता, लाचारी,

तंगी, क्षुद्रता प्राप्त होती है, अपने को भाग्यहीन समझ लेना बेबसी की बातों को लेकर झींकना और दूसरों की इष्टसिद्धि पर कुढ़ना हमें सफलता से दूर ले जाता है, विरोधी भाव रखने से मनुष्य उन्नत अवस्था में कदापि नहीं पहुँच सकता। संसार के साथ अविरोधी रहिये, क्यों कि विरोध संसार की उत्कृष्ट वस्तुओं को अपने निकट नहीं आने देता और अविरोध उत्कृष्ट वस्तुओं का एक आकर्षक बिन्दु है।

तुम्हारे भाग्य में आशावाद का स्वर्ग आया है न कि निराशावाद का नरक। तुम अपनी जीवन यात्रा में मन्दगति से घिसटते हुये पशुवत पड़े रहने के लिये जगत् में प्रविष्ट नहीं हुये हो। अपने को अशक्त-असमर्थ मानने वाले डरपोक व्यक्तियों की श्रेणी में तुम नहीं हो। तुम दुर्बल अन्तःकरण वाले निराशावादियों की तरह निःसार वस्तुओं के कुत्सित चिन्तन में निष्प्रयोजन अपनी शक्तियों का अपव्य नहीं करते। संसार में तुम उस महान पद पर आसीन होंगे जिस पर संसार के अन्य प्रतापी पुरुष होते आये हैं। अभी तुम इस स्थिति में पड़े हो तो क्या, शीघ्रही उच्चत्तम विकास के दिव्य प्रदेश में तुम प्रविष्ट होने वाले हो। तुम परमेश्वर के अंश और तुम्हें प्रकृति ने अपनी इष्ट-सिद्धि के लिये पर्याप्त साधन और सामर्थ्य प्रदान किये हैं। तुम एक बार प्रयत्न तो करो।

मनुष्य का स्वभाव ज्यों-ज्यों आत्मिक भाव और आत्मिक जीवन की अभिवृद्धि करता है, त्यों–२ उसमें सामर्थ्य भी बढ़ते जाते हैं। जैसे-जैसे आप अपने शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों में छिपे सामर्थ्यों को प्रकट करेंगे-आविष्करण करेंगे-वैसे-वैसे विशेष रूप से महान बनते जाँयेंगे। उच्च विचारों वाले

जितने अंशों में आप अपने जीवन का विकास कर सकेंगे उतने ही अंशों में उसका यथार्थ उपभोग भी कर सकेंगे।

कहते है एक बार एक बड़े भारी व्यापारी की पत्नी तार लिये दौड़ी हुई उसके कमरे में, जहाँ यह बैठा व्यापार की कुछ नवीन योजनायें सोच रहा था, आई और हाँफते हुये बोली—प्यारे ! हमने सब कुछ खो दिया है ! हमारे जहाज माल असबाब इत्यादि डूब गये है, सारी उम्र के किये - कराये पर पानी फिर गया है, हमारी सब बहुमूल्य वस्तुयें जा चुकी है। ऊफ, अब क्या होगा ? हाय ! हाय ! हमें कौन पूछेगा ?

पति ने धैर्य दिखाते हुये कहा —'क्या तुम्हें भी मुझसे छीन लिया गया है ?'

वह बोली— पागलों की सी बातें क्यों करते हो, मैं तो सदैव तुम्हारे पास हूं।

--और हमारी आदतें तो नहीं चली गयी हैं ?

--नहीं आदतें भला कहाँ जायेंगी ?

तब तो निराश होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। हमने अपनी आदतों की कमाई ही खो दी हैं। संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूतियाँ (आशावादिता, स्वास्थ्य, उत्साह अध्यवसाय, परिश्रम और प्रेम) अब भी हमारे पास है। हम शीघ्र ही सब कुछ पुनः प्राप्त कर लेंगे, तुम धैर्य रक्खो। कहते हैं कि कुछ ही वर्षों बाद उनका गृह धन्य-धान्य से पूर्वत हो गया। जब उनसे सफलता का रहस्य पूछा गया तो उन्होंने कहा, मैं कभी आशा नहीं छोड़ता, विपत्ति के काले बादलों से चिन्तित नही होता वरन हँसते-हँसते उनका सामना करता हूं। कठिनाई आने से निराशा का चिन्ह मुखमण्डल पर दिख-

लाना अच्छे से अच्छे मनुष्य को विफल बना सकता है।

अनेक व्यक्ति थोड़ी सी कठिनाई आने पर अत्यन्त अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, घबराने लगते हैं और ठोकर पर ठोकर खाते हैं। निराशा उनके जीवन को भार बना देती है। हमारी असफलतायें अधिकांश में निराशा के अभद्र विचारों से ही प्राप्त होती है और वे अयोग्य मन्त्रणाओं, भय-पूर्ण कल्पनाओं के ही फल हैं। यदि हम पूर्ण रूप से कल्पना को उत्तम वस्तुओं की ओर चलाया करें और चिन्ता, दुर्बलता, शंका, निराशा के विचारों से हटाकर आशा और हिम्मत के उत्पादक वातावरण में रखना सीख लें तो हमारे जीवन का स्रोत एक आनन्दमय जगत में प्रवाहित होने लगे। निराशा एक भयंकर मानसिक रोग है। इससे मुक्ति पाने के लिये विचारो का रुख बदलने की परम आवश्वकता है। धीरे-धीरे अपने हृदय में नाउम्मीदी, कमजोरी और निराशा के भावों के स्थान पर इनके प्रतिपक्षी—साहसी, हिम्मत, सफलता और उत्साह वर्द्धक भावों को जमाना चाहिये। उन्हें अंकुरित, पल्लवति एवं पुष्पित करने के लिये अपनी सत् इच्छाओं का अभिनय-पार्ट अवश्य करना चाहिये। हम जिस कार्य, उद्देश्य या मनोरथ में सफलता लाभ करने की कोशिश कर रहे हैं, उसका अभिनय भलीभाँति करें। यदि हम एक विद्वान बनने की चेष्टा कर रहे हों तो अपने आपको एक विद्वान की ही भाँति रखें, वैसा ही वातावरण एकत्रित कर, निराशा निकालकर यह उम्मीद रक्खें कि मूर्ख कालिदास की भांति हम भी महान बनेंगे। निराशा निकालकर हम इस अभिनय को पूर्ण करने की चेष्टा करें। हम अनुभव करें कि मैं विद्वान हूँ, सोचें कि मैं अधिकाधिक विद्वान बन रहा हूं,

मेरी विद्वता की निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है। हमारे व्यवहार से लोगों को यह ज्ञात होना चाहिये कि हम सचमुच विद्वान है। हमारा आचरण भी पूर्ण विश्वासयुक्त हो। शंका, सन्देह व निराशा का नाम-निशान भी न हो। अपने इस विश्वास पर हमें पूरी दृढता का प्रदर्शन करना उचित है। यह अभिनय करते करते एक दिन हम स्वयमेव अपने कार्य को पूर्ण करने की क्षमता प्राप्त कर लेंगे।

जिस वस्तु को हमें प्राप्त करना है उसके लिये जितनी मानसिक क्रिया होगी, जितना उसकी प्राप्ति का विचार किय जायगा, उतनी ही शीघ्रता से वह वस्तु हमारी ओर आकर्षित होगी प्रत्येक वस्तु पहले मन में उत्पन्न की जाती है, फिर वस्तु जगत में उसकी प्राप्ति होती है। हम अपने विषय में अयोग्यता की भावना रखते हैं। अतः उसी प्रकार की हमारे अन्तःकरण की सृष्टि होती जाती है। हमारी भय की डरपोक कल्पनायें ही हमारे मन में निराशा के काले बादलों की सृष्टि कर रही है। मनःस्थिति के ही अनुसार अन्य व्यक्ति हमसे द्वेष अथवा प्रेम करते हैं और संसार की समस्त वस्तुयें हमारे पास आकर्षित होकर आती या मुड़कर दूर भागती हैं।

तनिक विचार करें, एकलव्य यदि गुरु द्रोण के यहाँ से निराश होकर धनुविद्या का अभ्यास छोड़ देता और भ्रान्ति के विचारों के सम्पर्क में आकर क्षुब्ध हो जाता तो क्या वह सफलता को प्राप्त कराने वाली वांछनीय मनः स्थिति स्थिर रख सकता था। उसने निराशा सूचक उनके शब्दों को अपने अन्तःकरण की स्थायी वृत्ति नहीं बनाया। उनके बलवान मन पर भ्रान्ति का कोई विचार या संस्कार अपना प्रभाव न डाल

सका दुर्बल व्यक्ति के चित पर ही प्रतिकूल प्रसङ्ग का कुप्रभाव पड़ता है। संसार के मनुष्य, चारों ओर से निकम्मे सन्देहात्मक दरिद्र विचार लाकर उसके अन्तःकरण में डालते हैं और उसकी सफलता, प्रसन्नता और उत्साह को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। यदि हम दूसरों की निराशोत्पादक बातों पर ध्यान दें और उधर से हमेशा के लिये मुख मोड़ लें, आशा के प्रकाश की ओर रुख कर लें तो अल्पकाल में ही विकसित पुष्प की भाँति आनन्दित हो सकते हैं।

जब हम निश्चय करलें कि मेरा निराशा से याव जीवन को सम्बन्ध नहीं होगा, मुझे नाउम्मीदों से कोई सरोकार नहीं है, मैं अब से वस्त्र-भूषा पर, शरीर पर, व्यवहार में, अपने कार्यों में कोई निराशा का कोई चिन्ह भी न रहने दूँगा, मैं पूर्ण शक्ति और मनोरथ सिद्धि में प्रवृत्त रहूँगा, निराशापूर्ण वातावरण से मेरा लेना देना नहीं है। मैंने तो अपनी मूल प्रवृत्ति ही उत्तम पदार्थों की ओर कर दी है। सफलता और मनोरथ-सिद्धि मेरे बाये हाथ का खेल है, मुझे संसार की कठिनाई अपने श्रेय के मार्ग से विचलित नहीं कर सकती।' तब याद रखें हमारे हृदय में एक दिव्य शक्ति-शासनकर्ता शक्ति उत्पन्न होगी। आत्मश्रद्धा और स्वाभिमान प्रबल होने लगेगी और हम आश्चर्यपूर्वक कहेंगे कि यह परिवर्तन न जाने क्यों कर हो गया? तब हम भी यही कहेंगे कि मन को आशा-पूर्ण प्रकाशित उत्साहित और प्रसन्न रखने से सफलता प्राप्त होती है आशावाद ही सफलता प्राप्त कराता है।

'हमारे किये कुछ न होगा' ऐसा निराशावादी विचार सफलता का विघातक शत्रु होता है। आशावाद बहुत बड़ा उत्पादक शक्ति है, जीवन की जड है। इसके

वस्तु निवास करती है। यह मानसिक क्षेत्र में प्रविष्ट करते ही बड़ा लाभ पहुँचाती है। अतः जिसे नाउम्मीद से छुटकारा पाने की आशका हो, उसे उचित है कि अपने मन की स्थिति को उत्पादक, उत्साहपूर्ण, उदार, प्रवर्द्धक और उदात्त रक्खें।

तुम निराश इसलिये हो कि भय ने और सन्देह ने तुम्हारे अन्तःकरण पर अधिकार कर लिया है। तुम्हें अपनी योग्यता के प्रति अविश्वास हो गया है' तुम्हें सफलता और दुर्भाग्य की मानसिक प्रवृत्तियों ने परास्त कर दिया है और हीनत्व की भावना ने तुम्हारे मानसिक जगत में तूफान लाकर तुम्हें अस्त-व्यस्त कर डाला है। विचारों की यह परवशता ही तुम्हे डुबो रही है। याद रक्खो! जब तक तुम किसी कार्य में हाथ नहीं डालोगे, तब तक अपनी शक्ति का अनुमान कदापि न कर पाओगे। मनुष्य जब तक अपने आपको यह न समझ ले कि वह कार्य करने की क्षमता रखता है, तब तक वह पंगु ही बना रहेगा। तुम्हें जो कुछ करना श्रेष्ठ जँचता है, जो कुछ तम्हारी अन्तर आत्मा कहती हैं, उसे दृढ़ संकल्प पूर्वक अवश्यमेव प्रारम्भ करो। डरो नहीं, शङ्का, सन्देह या अविश्वास को कोई बात न सोचो, बल्कि कार्य शुरु ही कर डालो। प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ कर सकता है और करेगा यदि अकृतकार्य होकर हिम्मत न हारे। हिम्मत हमेशा बाजी मारती है। तुम अपने सामर्थ्य और निश्चय बलों की अभिवृद्धि करते रहो। संसार में जो करोड़ों मनुष्य निराश होरहे हैं उनका प्रधान कारण आत्मविश्वास की कमी है। श्रद्धा खो बैठे हैं और दूषित निष्प्रयोजन कल्पनाओं के ग्रास बने हैं। तुम इनसे बचे रहो। सदा-सर्वदा आन्तरिक मन को उन्नत

भावनाओं के प्रति लक्ष्य किये रहो और अपनी समस्त शक्तियों में अखण्ड श्रद्धा और पूर्ण विश्वास रक्खो। किसी विशेष मर्यादा तक केवल ऊपरी विश्वास ही मत रक्खो, परन्तु भीतरी तह में भी दृढ़ता से विश्वास की अमिट छाप जमा दो। फिर विश्वास के सुमधुर फल देखो। तुम्हारी सब निराशा रफूचक्कर हो जायगी और अभ्यन्तर प्रदेश से अनंत शक्ति का आविर्भाव होगा।

आज से तुम अपनी क्षुद्रता का चिंतन छोडो। जब कभी विश्व की विशालता पर विचार करने बैठो तो अपने मन, शरीर, आत्मा की महान शक्तियों पर चित्त एकाग्र करो। शक्ति के इस केन्द्र पर मन स्थित रखने से कोई दुर्बलता तुम्हारे अन्तःकरण में प्रवेश नहीं कर सकती। जब तुम शक्ति के विशाल बिन्दु पर समस्त शक्तियाँ केन्द्रित करोगे तो तुम्हें प्रतीत होगा कि पाषाण में, धातु में, वनस्पति में, प्रकृति में, पशु में और जिस किसी वस्तु में भी विशालता है, उस सबसे तुम्हारी विशालता कहीं अधिक है। इन सबकी विशालता की एक सीमा निश्चित है, किंतु तुम्हारी शक्तियों की सीमा अपार है।

जीवन एक दीप समझें। उसकी शिखा में सजीवता तभी आयेगी, किरणें तभी जगमायेगी जब आशा उसे सदा अपने तेल से परिपूर्ण रक्खेगी। आशा के तेल के समाप्त होते ही या तो दुःख दर्द समुद्र में विलीन हो जाना होगा या फिर मृत्यु की शीतल-सी गोद में हमेशा के लिये समा जाना होगा।

प्रेषक–महेश चन्द्र

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 170

श्रीमान् Sri Chilwar Narsimhlu
Hanmandlu General Stores
V&P.O. Banswada Mandal
Nizamabad- A.P.
503187